उन्नति का सिद्धान्त

लेखक

शालिग्राम वर्म्मा

एम० ए०, बी० एस-सी०

उन्नति का सिद्धान्त

लेखक

शालिग्राम वर्म्मा, एम० ए०, बी० एस-सी०

प्रकाशक

वैज्ञानिक-साहित्य-मन्दिर, प्रयाग

मूल्य ॥)

भूमिका

इस छोटी सी पुस्तक में हम ने श्री शालिग्राम वर्म्मा के उन लेखों को संग्रह कर प्रकाशित करने की चेष्टा की है जिनके कुछ भाग प्राय: १० बरस पहले 'विज्ञान' में प्रकाशित हो चुके थे। वे लेख सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हर्बर्ट स्पेन्सर के एक लेख के आधार पर लिखे गये थे, परन्तु इस पुस्तक में प्रकाशित करते समय उनकी बिलकुल काया पलट हो गयी है। विकास सिद्धान्त के आधार पर जिन तर्कों द्वारा 'उन्नति के सिद्धान्त' की यह विवेचना की गयी है वे आजकल सारे सभ्य संसार को मान्य हैं। अपने देश के नवयुवकों में विज्ञान के अध्ययन में अभिरुचि उत्पन्न करने के साहस से प्रेरित होकर वर्म्मा जी ने इस पुस्तक की रचना की है। संसार की प्रत्येक घटना के अन्वेषण में गहरा निरीक्षण और स्वतन्त्र चिन्तन-प्रवाह जिस दिन वास्तविक रूप से हमारा पथ-प्रदर्शक हो जायगा हमारे साहित्य में उसी दिन एक ऐसी अभूतपूर्व शक्ति का आविर्भाव होगा जिसके द्वारा हमारी मानसिक उन्नति होने में देर न लगेगी। यही वह शुभ दिन होगा जब सभ्य संसार के अंतर्राष्ट्रीय-कुटुम्ब में हम लोग भी अपनी स्थिति का सुसंस्कृत परिचय दे सकेंगे। विज्ञान की दिनोदिन उन्नति में हमारा देश भी अग्रसर होकर इस सिद्धान्त के तत्व के वास्तविक ज्ञान का परिचय दे यही इन पंक्तियों के लेखक की शुभ कामना है!

प्रकाशक

विषय-सूची

चित्र-सूची



यह द्विगर्भकोषी स्तनपायी कंगारू का चित्र है।
में पाया जाता है। इसके पेट में एक थैली होती है f
कर बड़ा होता है।

उन्नति का सिद्धान्त

उन्नति का अर्थ

आजकल उन्नति का अर्थ परिवर्तनशील माना जाता है। यह बहुत कुछ अनिश्चित सा है। साधारण रीति पर वृद्धि होना ही उन्नति समझी जाती है। किसी जाति के मनुष्यों की गणना-वृद्धि तथा किसी साम्राज्य के अधीन देशों की विस्तार-वृद्धि को भी उन्नति कह सकते हैं। कृषि और शिल्प आदि कलाओं में उन्नति का विचार इनके द्वारा प्राप्त पदार्थों की संख्या के बाहुल्य में मौजूद है। इन पदार्थों की निकृष्ट, साधारण और उत्तम अवस्थाओं में, तथा इनके निर्माण-विधि की श्रेष्ठता और हीनता में भी उन्नतिका ही प्रकाश झलक रहा है। मनुष्यों की धार्मिक सामाजिक और मानसिक अवस्थाओं के विवेचन करने में भी उन्नति का आश्रय लेना पड़ता है और उनके अनुभव और विचारों के निगूढ़ सिद्धान्तों के अन्वेषण में भी (जिन्हें हम विज्ञान और कलाकौशल के नाम से पुकारते हैं) उन्नति की ही तूती बोल रही है।

साधारण दृष्टि से देखने पर तो उन्नति की यह व्याख्या सत्य प्रतीत होती है, परन्तु यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो उन्नति का यह आधुनिक अर्थ न केवल संदिग्ध ही है वरन् कुछ अंशों में भ्रांतिमूलक भी जान पड़ता है! क्योंकि उन्नति की यथार्थता की अपेक्षा यह उसके आभास का ही द्योतक मालूम होता है! मामूली तरह पर शैशवावस्था से युवावस्था प्राप्त होने तक तथा असभ्य मनुष्य से शिक्षित और ज्ञानी हो जाने में जो मानसिक उन्नति होती है उसका निर्णय हम इस बात से कर सकते हैं कि इन अवस्थाओं में इन मनुष्यों ने अधिक बातों का ज्ञान प्राप्त किया तथा बहुत से सिद्धान्तों के रहस्यों को समझा; परन्तु वास्तविक उन्नति उन आन्तरिक विकारों पर निर्भर है जिनका बोध हमें इस ज्ञान-वृद्धि द्वारा होता है। आजकल सामाजिक उन्नति की परिभाषा में मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति और तृप्ति के लिये बहुत से और नवीन पदार्थों का उत्पन्न करना, जान माल की भली भाँति रक्षा होना तथा हर व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार कार्य करने में अधिक स्वतंत्रता देना ही श्रेय समझा जाता है; परन्तु सामाजिक संगठन की रचनाओं के परिवर्तन को ही यथार्थ में सामाजिक उन्नति कहा जा सकता है! इसी परिवर्तन को उन सब नतीजों का आदि कारण समझना चाहिये!

उन्नति के इस आधुनिक अर्थ के अनुसार तो संसार का प्रत्येक पदार्थ उन्नति प्राप्त होने के ही हेतु बनाया गया मालूम

होता है। इस सिद्धान्त को अंग्रेज़ी में (Teleologicalism) अर्थात् हेतुवाद कहते हैं। इस सिद्धान्त को मानने वालों का यह दृढ़ निश्चय है कि संसार में न्यूनातिन्यून वस्तु भी उस जगत-पिताने किसी न किसी हेतु से ही बनाई है, अतः संसार की सभी वस्तुएँ उपयोगी और लाभदायक हैं।

हम उन्नति के अर्थ में केवल उन्हीं बातों का विचार करते हैं जो मानवी सुख और समृद्धि की द्योतक हैं। सारांश यह कि आजकल हम लोग केवल उसी परिवर्तन को उन्नति के नाम से पुकारते हैं जिससे प्रत्यक्ष, अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रीति से मनुष्य-जाति का हित-साधन हो। परन्तु उन्नतिका सच्चा अर्थ समझने के लिये यह परमावश्यक है कि हम अपनी अर्थचिन्तना छोड़कर इस परिवर्तन के वास्तविक स्वरूप को समझने की चेष्टा करें। जैसे, यदि हम यह विचार थोड़ी देर के लिये अपने चित्त से दूर कर दें कि भूतत्व-विषयक क्रमपूर्ण विकारों के ही कारण से हमारी पृथिवी लाखों वर्ष पर्य्यन्त मनुष्यों के रहने योग्य हो पाई है; अतः यही उसकी भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी उन्नति है, तो इस उन्नति का यथार्थ रहस्य जानने के लिये हमें इन सब विकारों का एक ऐसा गुण तलाश करना पड़ेगा जो सब में सामान्यतः पाया जाता हो। अथवा यों कहिये कि हमें एक ऐसा सिद्धान्त ढूँढ़ निकालना पड़ेगा जिसके यह सब अन्तर्गत हों। अब हम इसी सिद्धान्त की खोज प्रारंभ करते हैं।

इस भौतिक संसार के प्रत्येक जीवधारी के विकास में किस

प्रकार क्रमोन्नति होकर वह अपनी आधुनिक अवस्था को पहुँचा है, इस सिद्धान्त की विशेष खोज करने का श्रेय जर्मनी के विद्वानों को ही मुख्यतया प्राप्त है। वोल्फ़, गर्टे और वोन बायर के अन्वेषणों द्वारा यह बात प्रायः सिद्ध हो चुकी है कि बीज के अंकुरित और पल्लवित होकर वृक्ष बनने में, तथा अण्डज द्वारा किसी योनिज की उत्पत्ति होने में जो परिवर्तन प्रतीत होता है वह उसके शारीरिक संगठन की समानता का विभिन्नता में परिवर्तित होने का चिन्ह है! अपनी पूर्वावस्था में तो अंकुर ऐसी वस्तु का बना हुआ होता है जो अपने विन्यास और रासायनिक संगठन में भी एक सा ही होता है। इसके विकास में सबसे पहली बात इसके अंग के किसी भी दो भागों में विभिन्नता उत्पन्न हो जाना है! शरीर-शास्त्रवेत्ता इस नवीन घटना को विभेद या प्रभेद कहते हैं। कुछ काल पर्य्यन्त इन्हीं भागों के और हिस्सों पर इस घटना का असर फैलने लगता है और धीरे धीरे विभिन्नता की यह लहर बढ़ते बढ़ते समस्त योनिज पर अपना अधिकार जमाकर उसके पूर्वोक्त रंग-रूप में असाधारण परिवर्तन पैदा कर देती है। यही परिवर्तन वास्तविक दृष्टि से देखने में ऐसी ऐसी अगणित घटनाओं का कारण है और इन्हीं घटनाओं के अपरिमित भेदोपभेद होने से जीव, जन्तु, वृक्ष तथा मनुष्य-देह के पेचदार और विस्तृत रग-पट्ठे बन गये हैं। प्रायः समस्त जीवधारियों की उत्पत्ति अथवा क्रम-विकास की यही एक रहस्यपूर्ण और विलक्षण कथा है। अस्तु इस सिद्धान्त

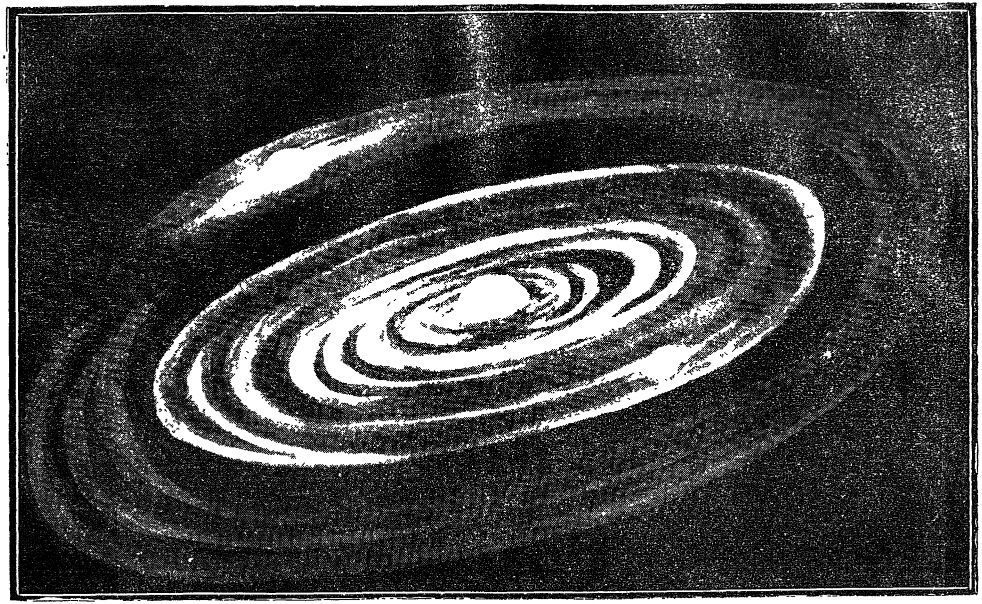
के अनुसार समस्त जीवधारियों के विकास में समानता से विभिन्नता में परिवर्तन होता चला जाता है !

परन्तु इस सिद्धान्त को सब घटनाओं पर घटाने के लिये हमें इसकी सार्वभौमिकता सिद्ध करनी पड़ेगी ! अथवा हमें साफ़ तौर से यह निश्चित कर देना पड़ेगा कि पृथिवी और उसके जीवों की उत्पत्ति में, समाज साम्राज्य, कलाकौशल, वाणिज्य-व्यापार, साहित्य, विज्ञान, तथा भाषा तक की उत्पत्ति और विस्तार में, यही सिद्धान्त स्थायी रूप से व्याप्त हो रहा है। अथवा इस विश्व की परम प्राचीन आदिम घटनाओं से लेकर अर्वाचीन सभ्यता की आधुनिक उन्नति तक जितने भी परिवर्तन हुये हैं सभी में समानता से विभिन्नता में परिवर्तन होने के चिन्ह विद्यमान हैं।

द्युलोक और पृथिवी की उत्पत्ति

अपने उपरोक्त कथन के पक्ष में हम पहले यही जानने की चेष्टा करते हैं कि द्युलोक और पृथिवी के उत्पन्न होने में यह सिद्धांत कहाँ तक सत्य प्रतीत होता है। हम थोड़ी देर के लिये यह बात मान लेते हैं कि सूर्य और अन्य ग्रह जिस पदार्थ के बने हुए हैं वह किसी समय में भाप के परमाणुओं की भाँति विस्तृत अवस्था में था और इन परमाणुओं की पारस्परिक आकर्षण-शक्ति के कारण धीरे धीरे यह विस्तृत परमाणु एक दूसरे के पास आते गये अथवा उन परमाणुओं के बीच बहुत कम अन्तर रह गया।

अंग्रेज़ी में इस कल्पना का नाम नीहारिकावाद है। इसके अनुसार द्युलोक अपनी आदिम अवस्था में अनियमितरूप से विस्तृत और विकाररहित माध्यम था। अतः उसके तापक्रम, गुरुत्व आदिक भौतिक गुणों में समानता मौजूद थी। परमाणुओं के संश्लेषण के कारण इस द्युलोक के अंतरंग और बाह्यांग के तापक्रम और गुरुत्व में समानता का नाश होकर विकार उत्पन्न होने से विभिन्नता का प्रादुर्भाव हो गया। संश्लेषण द्वारा जो बाहरी भाग केन्द्र की ओर दबने प्रारम्भ हुये तो इसका परिणाम यह हुआ कि इस द्युलोक में अपने केन्द्र के चारों ओर भिन्न भिन्न कोणगतियों से घूमने की नयी शक्ति उत्पन्न हो गई।



सूर्य्य के चारों तरफ़ गैस की नीहारिकायें बन रही हैं